श्री शत्रुंजय मुक्ति सम्यग्ज्ञान अभ्यासक्रम

श्री शत्रुंजय-मुक्ति
सा विद्या या विमुक्तये
सम्यग्ज्ञान अभ्यासक्रम

तृतीय वर्ष

शाह गोविन्दजी वीरम फेक्टरी कम्पाउन्ड़, मोंढा रोड, औरंगाबाद

(सम्यग्ज्ञान विशारद) अभ्यास १०

❀ शुभाशीर्वाद ❀

तपस्वीरत्न, अचलगच्छाधिपति प.पू.आ.भ. श्री गुणोदयसागरसूरिश्वरजी म.सा.

❀ दिव्य कृपा ❀

आगम आराधिका बा.ब्र.प.पू. मुक्तिश्रीजी म.सा.
शासन प्रभाविका प.पू. जयलक्ष्मीश्रीजी म.सा.
मार्गदर्शिका- प्रेरक - सा. डॉ. जयदर्शिताश्रीजी म.सा. M.Sc., Ph.D.
हिंदी अनुवाद - सौ. काश्मीरा लोडाया, सौ. भारतीबेन दंड, सौ. भारती लोडाया

सौजन्य : एक श्रुतभक्त परिवार

स्तोत्र - अर्थ - रहस्य

शांति - स्तव (लघुशांति)

मूल -

अेवंयन्नामक्षर - पुरस्सरं - संस्तुता जयादेवी ।
कुरुते शान्तिं नमतां, नमो नमः शान्तये तस्मै ।।१५।।

-: शब्दार्थ :-

अेवं - उपर कहे अनुसार
यन्नामाक्षर-पुरस्संर - जिनके नाममंत्र और अक्षर मंत्रो की पुरश्चर्या पूर्वक
संस्तुता - अच्छी तरह स्तवित
जयादेवी - जयादेवी
कुरुते शान्तिं - शांति करती है
नमतां - नमन करनेवालों को
नमो नमः - नमस्कार हो, नमस्कार हो
शान्तये तस्मै - उन शांतिनाथ भगवान को

अर्थ-संकलना : उपर कहे अनुसार जिनके नाम-मंत्र और अक्षर मंत्रो की पुरश्चर्या पूर्वक स्तवीत (विजया) जया देवी नमन करने वालों को शांति प्रदान करती है, उन श्री शांतिनाथ भगवान को नमस्कार हो, नमस्कार हो.....१५

मूल -

(फलश्रुति)

इति पूर्वसूरि-दर्शित-मन्त्रपद-विदर्भितः स्तवः शान्तेः ।
सलिलादि-भय-विनाशी, शान्त्यादिकरश्च भक्तिमताम् ।।१६।।

-: शब्दार्थ :-

इति - अन्ततः
पूर्वसूरि-दर्शित-मन्त्रपद-विदर्भितः - पूर्वसूरिओने - आम्नायपूर्वक प्रकट किये मंत्र पदों से गुंथा हुआ ।
स्तवः शान्तेः - शान्ति स्तव
सलिलादि भय विनाशी - जल वगैरह भयो का विनाश करनेवाला ।
शान्त्यादिकरः - शांति, तुष्टि, पुष्टि वगैरह करने वाला
च - और
भक्तिमताम् - भक्ति करनेवालों को, विधिपूर्वक अनुष्ठान करनेवालों को

अर्थ-संकलना :- अंततः बताना है कि शांति-स्तव पूर्वसरिओ ने गुरु आम्नायपूर्वक प्रकट किये मंत्रपदो से गुंथा गया है और वह विधिपूर्वक अनुष्ठान करनेवालों को जल वगैरह के भय में से मुक्त करनेवाला तथा उपद्रवों की शान्ति करनेपूर्वक तुष्टि और पुष्टि को भी करनेवाला है ।

मूल -

यश्चैनं पठति सदा, श्रृणोति भावयति वा यथायोगम् ।
सहि सान्तिपदं यायात् , सूरिः श्रीमानदेवश्च ।।१७।।

-: शब्दार्थ :-

यः - जो
च - ओर
अेनं - इस स्तव को
पठति - पढता है
सदा - निरंतर
श्रृणोति - दूसरों के पास से सुनता है
भावयति वा यथायोगम् - अथवा मंत्र योग के नियमानुसार उसकी भावना करते हैं ।
स - वे
हि - निश्चित
शांतिपदं - शांतिपद, सिद्धिपद को
यायात - पाते हैं
सूरि : श्रीमानदेवश्च - श्री मानदेवसूरि भी

अर्थ-संकलना - और जो इस स्तव को सदा भाव - पूर्वक पढते हैं, अन्य के पास से भाव पुर्वक सुनते हैं अथवा मंत्र योग के नियमानुसार उसकी भावना करते हैं, वे निश्चित शांतिपद को प्राप्त करते हैं । सूरि श्री मानदेव भी शांतिपद को पायें ।

मूल -

(अंत्य-मंगल)

(सिलोगो)

उपसर्गाः क्षयं यान्ति, छिद्यन्ते विघ्न-वल्लयः ।
मनः प्रसन्नतामेति, पूज्यमाने जिनेश्वरे ।।१८।।

-ः शब्दार्थ :-

उपसर्गाः - उपसर्ग, आफत
क्षयंयान्ति - नाश पाते हैं
छिद्यन्ते - छेदे जाते हैं
विघ्न-वल्लयः - विघ्न रुपी बेलें
मनः - मन, चित्त
प्रसन्नताम् अेति - प्रसन्नता को पाता है
पूज्यमाने - पूजने से
जिनेश्वरे - जिनेश्वर को

अर्थ-संकलना - श्री जिनेश्वर देव का पूजन करने से समस्त प्रकार के उपसर्ग (आफत) नाश पाते हैं । विघ्नरुपी बेले छेदी जाती है और मन प्रसन्नता को पाता है.....१९

मूल -

सर्व- मंगल - मांगल्यं, सर्व-कल्याणकारणम् ।
प्रधानं सर्व-धर्माणां, जैनं जयति शासनम् ।।१९।।

-ः शब्दार्थ :-

सर्व-मंगल-मांगल्यं - अर्थ पहले दिया जा चुका है ।

अर्थ-संकलना - सर्व मंगलो में मंगलरुप, सर्व कल्याणों का कारणरुप और सर्व धर्मो में श्रेष्ठ ऐसा जैन शासन (प्रवचन) सदा जय पाओ, जयवंता वर्तो १९

श्री दंडक प्रकरण

श्री गजसारमुनि

अल्प बहुत्व

पज्जमणु बायरग्गी, वेमाणिय भवण निरय वंतरिया ।
जोइस चउ पण तिरिया, बे इंदिय तेइंदिय भू आऊ ।।३९।।
वाउवणस्सइ चिय, अहिया अहिया कमेणमे हुंति ।
सव्वे वि इमे भावा, जिणा मअे णंतसो पत्ता ।।४०।।

पर्याप्ता मनुष्य, बादर अग्निकाय, वैमानिक, भवनपति, नारकी, व्यंतर, ज्योतिषी चउरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, बेइन्द्रिय, पृथ्वीकाय, अप्काय, वायुकाय, और निश्चय से वनस्पतिकाय से सब अनुक्रम से एक एक से अधिक होते है ।

हे जिनेश्वरो ! ये सब भव मैने अनंती बार प्राप्त किये है ।

किन जीवों की संख्या कम (अल्प)....किन जीवों की उनसे कितने अधिक इसकी जानकारी जीवों का 'अल्प बहुत्व' कहलाती है ।

संख्या में गिनती शक्य हो वहाँ तक 'संख्यात' शब्द वापरते है.... गिनती शक्य न हो वे 'असंख्यात' और उनसे भी सविशेष अधिक 'अनंत ' कहलाते है ।

जीवों का अल्पबहुत्व नीचे मुजब है -

१) पर्याप्त मनुष्य :- सबसे अल्प, उससे
२) बादर अग्निकाय :- असंख्यात गुना (इसका अर्थ है मनुष्यों से अग्निकाय जीव असंख्यात गुना अधिक है, इसीतरह आगे भी समझना)
३) वैमानिक देव :- उससे असंख्यात गुना
४) भवनपति देव :- उससे असंख्यात गुना
५) नारकी :- उससे असंख्यात गुना
६) व्यंतर देव :- उससे असंख्यात गुना
७) ज्योतिषी देव :- उससे असंख्यात गुना
८) चउरिन्द्रिय जीव :- उससे असंख्यात गुना
९) पंचेन्द्रिय तिर्यंच :- उससे विशेषाधिक (अर्थात् चउरिन्द्रिय जीवों से पंचेन्द्रिय तिर्यंच दुगुने से कम है)
१०) द्विन्द्रिय जीव :- उससे विशेषाधिक

११) तेइन्द्रिय जीव :- उससे असंख्यात गुना

१२) पृथ्वीकाय जीव :- उससे असंख्यात गुना

१३) अपकाय जीव :- उससे असंख्यात गुना

१४) वायुकाय जीव :- उससे असंख्यात गुना

१५) वनस्पतिकाय जीव :- अनंतगुना

अग्निकाय के भेद

इंगाल-जाल-मुम्मुर-उक्कासणि - कणग विज्जुमाइया ।
अगणि-जियाणं-भेया, नायव्वा निउण - बुद्धिए ।।६।।

ज्वाला, अंगारे, स्फुलिंग, उल्कापात, बिजली आदि अग्निकाय जीव है । अंगारे, ज्वाला, चिनगारी, उल्कापात, आकाश से गिरनेवाले स्फुल्लिंग कणी आदि बिजली वगैरह अग्नि जीवों के भेद सूक्ष्म बुद्धि से जानना ।

इस अल्पबहुत्वका सूक्ष्मता से गहराई से विचार करें तो खयाल आता है की इस विश्व में रहे हुए सब प्रकार के जीवों में सबसे अल्प संख्या में मनुष्य है, यही मानवभव की दुर्लभता को उजागर करता है ।

वैमानिक देव भी मनुष्य से असंख्यातगुणा अधिक है । ऐसे दुर्लभ मानव भव की प्राप्ति महान पुण्ययोग से हुई है । अन्य सब भव इस जीव ने अनंतबार प्राप्त किये है अब इन भवो को प्राप्त न करते अभी प्राप्त मानव भव की सुंदर आराधना कर भवभ्रमण को मर्यादित कर दें । और जल्द ही जन्म-मरण के जंजाल से मुक्त बन जाय ।

अप्काय के भेद

भोमंतरिक्खमुदगं ओसा हिम - करग - हरितणु महिया ।
हुंति धणोदहिमाई, भेयाणुगा य आउस्स ।।५।।

भौम, आकाश में से ओस, हिम, बर्फ (आकाश से बरसा हुआ) जल, धनोदधि आदि अप्काय है ।

भूमि और आकाश का पानी, शबनम, ओस, बर्फ, आकाश से गिरी बर्फ, हरी वनस्पति पर फूट निकलने वाला पानी, कोहरा और धनोदधि आदि जल के भेद है ।

संपइ तुम्ह भत्तस्स, दंडग पय भमण भग्ग हिययस्स ।
दंडतिय विरय सुलहं, लहु मम दिंतु मुक्खपयं ।।४१।।

सांप्रत चौबीस दंडक में भ्रमण से खेदयुक्त मनवाले ऐसे आपके भक्त को मन-वचन और काया इन तीन दंड विराम सुलभ ऐसे मोक्षपद की जल्दी प्राप्ति करा दो ।

हे प्रभु ! दंडक के अभ्यास से जीव चौबीस दंडकों में किस तरह घूमा है, कैसे कैसे जन्ममरण किये, आधि-व्याधि उपाधि से ग्रस्त इस संसार का मुझे अब भय लगता है, मैं बहुत खेद अनुभव करता हूँ ।

हे देवाधिदेव ! अब मैं भटक भटक कर आपके चरण में और आपके शरण में आया हूँ, संसार से विरक्त हुआ हूँ, तेरा भक्त बना हूँ, अब मुझे मन,वचनकाया के दंड से विराम लेना है, यदि इन तीन योगों को विराम मिलता है तभी मुझे अनंत सुख के धामस्वरुप मोक्षपद की प्राप्ति होगी ।

हे वीतराग ! अब मुझे सत्वर राग,द्वेष की परिणति से मुक्ति दे । जल्द ही मोक्षपद देकर संसार एवं कर्म के बंधन मेंसे मुक्त कर.... मुक्त कर !

सिरि जिणहंस मुणीसर, रज्जे सिरि धवलचंद सीसेण ।
गजसारीण लिहिया, अेसा विन्नति अप्पहिया ।।४२।।

श्री जिनहंस, मुनिश्वर के राज्य संबंधी श्री धवलचंद्र मुनि के शिष्य गुजसार मुनि ने यह विज्ञप्ति अपने आत्मा के हितार्थ लिखी है ।

श्री जिनेश्वर परमात्मा के जयवंता शासन में जिनका पुण्यवंत साम्राज्य प्रवर्तमान है ऐसे श्री जिनहंस मुनि के श्री धवलचंद्र मुनिराज के शिष्य श्री गजसार मुनि ने अपने आत्महित और आत्मकल्याणार्थे यह रचना की है, प्रभु विज्ञप्ति का स्वीकार करें ।

दंडक के विवेचन में कहीं भी जिनाज्ञा विरुद्ध लिखा गया हो तो त्रिविध-त्रिविध मिच्छामि दुक्कडम् ।

जिनशासन के महाप्रभावक आचार्य भगवंत

महाराव भारमलजी प्रतिबोधक, युगप्रधान

(१८) श्री कल्याणसागरसूरि म.

वढियार प्रदेश.....

लोलाडा गांव.....

वहां श्रीमाल ज्ञाती के, कोठारी वंशीय श्रेष्ठी नानिग और नामिल देवी श्राविका रहते थे....

वि.स. १६३३ के वैशाख सुदि ६ के शुभ दिन नामिलदेवी ने पुत्ररत्न को जन्म दिया, बालक का नाम रखने में आया कोडनकुमार, बालक स्वरुप में इन्द्र जैसा प्रभावशाली था, माता नामिलदेवी ने गर्भाधान के समय उगते सूर्य को निरखा था। तीर्थंकर परमात्मा की माता जो चौदह स्वप्न निहारती है, उसमें भी सातवें स्वप्न में सूर्य निहारती है। कुलगुरु श्रीधर भट्ट को स्वप्न का फल पूछने पर उन्होंने देवीपुत्र जन्म का फल सूचित किया था। कोडन पाँचेक वर्ष का हुआ उस वक्त अंचलगच्छाधिपति धर्ममूर्तिसूरि विहार करते हुए लोलाडा में पधारे, श्रेष्ठी नानिग व्यापार कार्य से परदेश गये थे, बालक माता के साथ गुरुवंदानार्थ उपाश्रय में गया और देवी संकेतानुसार गुरु की गोद में दौड कर बैठ गया, इससे सब आश्चर्यचकित हो गये। गुरु ने बालक में सामुद्रिक लक्षणो को देखकर नामिलदेवी के पास उसकी मांग रखी और बताया की उसके द्वारा जैनशासन की महिमा बढेगी। बालक के पिता परदेश गये होने का बहाना बनाकर माता ने अपनी अनिच्छा व्यक्त की। बालक नौ वर्ष का हुआ तब सूरि पुनः वहां पधारे, उनकी वैराग्य गर्भित वाणी का श्रवण करके कोडन को वैराग्य उत्पन्न हुआ, माता-पिता की आज्ञा लेकर उसने गुरु का संग लिया।

धर्ममूर्तिसूरि बालक को लेकर धवल्लकपुर धोलका में पधारे। वि.स.. १६४२ में फागुन सुदि ४ शनिवार को वहां उसे दीक्षा देकर उसका कल्याणसागरमुनि ऐसा नामाभिकरण किया। वहां के नागडा गोत्रीय माणिक नामक धनवान श्रेष्ठी ने पांच हजार टंक खर्च कर दीक्षा-महोत्सव किया। पालीताणा में वि.सं. १६४४ में माघ सुदि ५ के दिन बडी दीक्षा देने में आयी थी। गुरु को पुंडरिकगिरि-शत्रुंजय में जिनेश्वर प्रभु का ध्यान धरने पर उन्हें ज्ञात हुआ की नवोदित शिष्य सर्वगुण संपन्न है इससे उन्हें योग्य जानकर वि.सं. १६४९ के माघ सुदि ६ रविवार को अहम्मदपुर-अहमदाबाद में आचार्यपद से विभूषित करने में आया। उस अवसर पर दीव बंदर के मंत्रीवर्य गोविंद शाह ने बहुत धन खर्च करके पदोत्सव किया, उसके पश्चात चरित्रनायक की महिमा सर्वत्र विस्तारित हुई।

वि.सं. १६७१ में धर्ममूर्तिसूरि के पाटण में कालधर्म पाने पर उसी वर्ष पोष वदि ११ के दिन कल्याणसागरसूरि को वहां गच्छनायक पद पर विभूषित करने में आया । अंचलगच्छ के ६५ वें पट्टधर वे हुए । उस वक्त महोपाध्याय रत्नसागरजी आदि जैसे वयोवृद्ध उसी तरह ज्ञानवृद्ध अन्य शिष्यो के होने के बावजूद धर्ममूर्तिसूरि ने अपने अनुगामी की पसंदगी कल्याणसागरसूरि जैसे युवा शिष्य पर उतारी, जिसके द्वारा उनकी उच्च प्रतिभा के हमें दर्शन हो सकते है, उस समय उनकी उम्र अडतीस वर्ष की ही थी ।

इसके पश्चात दूसरे ही वर्ष यानि की वि.सं. १६७२ में उदयपुर संघ ने चरित्रनायक को 'युगप्रधान' पद से विभूषित किया ।

कल्याणसागरसूरि की उपदेश से जामनगर के मंत्री बंधु वर्धमान-पद्मसिंह शाह ने विपुल धन खर्चा है.... सूरि का उपदेश सुनकर वि.सं. १६५० में उन्होंने श्रीशत्रुंजय का विशाल तीर्थसंघ निकाला । संघ जामनगर पधारा तब संघपतियो ने जाम जसवंतसिंह को मूल्यवान भेंट धरी.... राजा ने प्रसन्न होकर उन्हें कुछ मांगने को कहा इसलीये संघपति बंधूओ ने संघ के रक्षणार्थ सुभटो (सिपाही)मांगे, राजा ने एक सौ सशस्त्र सुभट देकर संघपति बंधुओ के पास से वचन मांगा की वे जामनगर में बसकर व्यापार करे, राज्य की ओर से सारी सुविधाये कर देने में आयेगी इत्यादि पक्के वादे राजा ने भी किये, संघपतियो ने राजा की बात स्वीकार ली, इससे हर्षित होकर राजा ने उन्हें वस्त्राभूषण आदि इनाम दिये ।

एक महिने बाद संघ श्रीशत्रुंजय पहुँचा और श्रीआदिश्वर प्रभु के दर्शन करके कृतार्थ हुआ, पन्द्रह दिन वहां रहकर संघपतियो ने धर्मकार्य आदि में प्रचुर द्रव्य खर्चा । गिरिराज पर राजा संप्रति, कुमारपाल, मंत्रीश्वर विमल तथा वस्तुपाल, तेजपाल वगैरह द्वारा निर्मित भव्य जिनालयों की श्रेणि देखर कल्याणसागरसूरि के उपदेश से वि.सं. १६५० के मार्गशीर्ष वदि ९ के दिन दो जिनालयो का खातमुहूर्त किया, इस तीर्थ संघ में उपस्थित रहे हुए सुप्रसिद्ध श्रेष्ठीवर्य राजसी शाह नागडा ने भी सूरिजी के उपदेश से १३ के दिन शुभ मुहूर्त में जिनालय का खातमुहूर्त किया उसके बाद तीर्थयात्रा से पावन होकर संघ स्वस्थान पर वापस पधारा । वचनानुसार संघपति बंधु जामनगर में आकर बस गये उनके साथ ५००० ओसवाल भी वहाँ वसे, उन्होंने खूब व्यापार वृद्धि करके जामनगर की समृद्धि को बढाया । राजा ने प्रसन्न होकर उन्हें अपने मंत्री नियुक्त किये ।

पद्मसिंह शाह की पत्नी कमलादेवी की प्रेरणा से दोनों बंधुओ ने जामनगर में भव्य जिनालय बंधवाने का निर्णय किया, कल्याणसागरसूरिजी के उपदेश से उसका वि.सं. १६६८ की श्रावण सुदि ५ के दिन उत्सवपूर्वक खातमुहूर्त हुआ । ६० कुशल कारीगरो ने आठ वर्ष तक काम करके भव्य जिनप्रासाद तैयार किया । कल्याणसागरसूरि के उपदेश से उसकी वि.सं. १६७६ में वैशाख सुदि ३ बुधवार को मूलनायक श्रीशांतिनाथ

भगवान सहित ५०१ जिनबिंबो की प्राणप्रतिष्ठा हुई । उसके बाद वि.सं. १६७८ की वैशाख सुदि ५ शुक्रवार को भमती (प्रदक्षिणा) की देवकुलिकाओ में द्वितीय प्रतिष्ठा हुई । कल्याणसागरसूरि के उपदेश से उन्होंने मोडपुर, छीकारी आदि स्थानो पर भी शिखरबंध जिनालय बंधवाये । शत्रुंजय में उनके दोनों जिनालयो के कार्य पूर्ण होने पर वहां वि.सं. १६७५ में वर्धमान तथा पद्मसिंह शाह ने अपने जिनमंदिरो में क्रमश : श्रीशांतिनाथ, श्रीश्रेयांसनाथ आदि जिनबिंबो की अंजन शलाका करवाकर प्रतिष्ठा करायी । वि.सं. १६७६ की फागुन सुदि २ के दिन पद्मसिंह शाह ने द्वितीय प्रतिष्ठा भी करायी । कल्याणसागरसूरि के उपदेश से उन्होंने धर्मकार्यो में बेशुमार धन खर्चा । बाद के राज-खटपट जागने से वे पुनः भद्रावती में आकर बस गये इत्यादि शृंखलाबंध प्रमाण मिलते है । चरित्रनायक के उपदेश से दोनों बंधुओ ने पावागढ, गिरनार, तारंगा, आबू, सम्मेतशिखर, शंत्रुंजय आदि अनेक तीर्थो की यात्राये करके वहां जीर्णोद्धार के कार्य किये । भद्रेश्वरतीर्थ का भी उन्होंने जीर्णोद्धार किया और प्रतिष्ठायें करवा कर बहुत धन खर्चा.....

कल्याणसागरसूरि के उपदेश से आगरा निवासी लोढा गोत्रीय मंत्री बंधु कुंवरपाल सोनपाल ने भी धर्मकार्यो में विपुल द्रव्य खर्चा । उनकी राजकीय कारकिर्दी भी अच्छी थी । कल्याणसागरसूरि के उपदेश से उन्होंने वि.सं. १६७० में आगरा से सम्मेतशिखरजी का ऐतिहासिक संघ निकाला था इसके पहले भी उन्होंने वि.सं. १६५७ में आगरा से श्रीशंत्रुंजय तीर्थ का संघ निकाला था, उसी तरह आगरा में अंचलगच्छीय श्रमणो के लिये दो मंजिला बडा उपाश्रय बंधवा दिया था ।

आगरा में उन्होंने दो जिनालय बंधवाये और वि.सं. १६७१ में वैशाख सुदि ३ शनिवार को मूलनायक श्रीमहावीरस्वामी तथा श्रीश्रेयांशनाथ सहित ४५० जिनबिंबो की भव्य प्रतिष्ठा करायी । कल्याणसागरसूरि के उपदेश से यह यादगार प्रतिष्ठा आगरा में सम्पन्न हुई ।

वि.सं. १६६५ में शत्रुंजय का बडा तीर्थसंघ निकाला, इस संघ में संघनायक श्रेष्ठी वर्धमान तथा पद्मसिंह शाह भी उपस्थित रहे थे । हालार सिंध, सोरठ, कच्छ, मरुधर, मालवा, गुजरात व आगरा आदि स्थानो से असंख्य यात्रिक इस संघ में एकत्रित हुए थे ।

वि.सं. १६६८ में अक्षय तृतीया के शुभ दिन रायसी शाह ने जामनगर में भव्य जिनालय बंधवाने का खातमुहूर्त किया । उस प्रसंग पर समस्त नगर को भोजनार्थ निमंत्रित करने में आया था, स्वयं जामसाहेब भी पधारे । वर्धमान-पद्मसिंह शाह महाजनो को साथ लेकर पधारे, पूरा शहर उत्सव में बदल गया । वि.सं. १६७५ में वैशाख सुदि ८ के दिन कल्याणसागरसूरि के उपदेश से मूलनायक श्रीशांतिनाथ प्रभु सहित ३०२ जिनबिंबो की उत्सवपूर्वक प्रतिष्ठा हुई । प्रभावना आदि कार्यो में भी रायसी शाह ने बहुत धन खर्चा, जिनालय के पास उपाश्रय भी बंधवा दिया ।

जामनगर के राजमान्य श्रेष्ठी रायसी शाह नागडा भी कल्याणसागरसूरि के अनन्य भक्त थे ।

रायसीशाह ने श्रीगोडीजी का संघ भी निकाला । वि.सं. १६८७ में जोरदार सुखा पडा, उस वक्त उन्होंने अन्नक्षेत्र खोले और अनेक लोगों को जीवनदान दिया । भलशारिणी गाँव में उन्होंने फूलझरी नदी के पास जिनालय तथा अंचलगच्छ की पौषधशाला बंधवायी । राजकोट में भी उन्होंने वहां के राजा विभोजी की प्रेरणा से श्रीकृष्णमंदिर बंधवा दिया.... कालावाड में उपाश्रय बंधवा दिया । हालार के मांढा गांव में शिखरबंध जिनालय बंधवाकर उसकी प्रतिष्ठा के प्रसंग पर पंच धार भोजन से महाराजा सहित श्रीसंघ को खिलाया । वहां पौषधशाला भी बंधायी । कच्छ-मांढा में भी राजवी शाह ने जिनालय बांधकर वहां अपना यश विस्तरित किया, तदुपरांत जल के प्याऊ, विश्रामगृह आदि बंधवाने में भी उन्होंने बहुत धन खर्चा । अंचलगच्छ के साधर्मिक बंधुओ के प्रत्येक घर में उन्होंने प्रभावना भी की । राजसी शाह के बंधु नेणसी शाह तथा उनके पुत्र सोमा ने भी अनेक पुण्य कार्य किये ।

वि.सं. १६६९ के फागुन सुदि ३, शुक्रवार को कल्याणसागरसूरि के उपदेश से राजसी शाह ने जामनगर में द्वितीय प्रतिष्ठा करायी । यह प्रतिष्ठा भी खूब ही धामधूम से सम्पन्न हुई । समस्त नगर को उन्होंने निमंत्रित करके पकवान्न भोजन कराया । ब्राह्मणो को दस हजार रुपियो का दान देने में आया । चौथा व्रत ग्रहण करने के समय भी राजसी शाह ने समस्त महाजनो को भोजन कराया उनकी पत्नी सीरीआदे ने गिरनार का संघ निकालकर वि.सं. १६९२ में अक्षयतृतीया के दिन यात्रा करके पंचधार भोजन से संघभक्ति की । सीरीआदे ने मासक्षमण करके छ री पालते हुए आबू और शत्रुंजय की भी यात्रा की और राजसी शाह की द्वितीय पत्नी राणादे ने भी स्वामीवात्सल्य आदि कार्यो में बहुत धन खर्चा ।

अहमदाबाद के ओसवाल ज्ञातीय, वडेरा शाखीय पारेख जसु के पुत्र लीलाधर, कल्याणसागरसूरि का भक्त था । चरित्र नायक के उपदेश से उसने वि.सं. १६९० में अहमदाबाद में सुवर्णमय प्रतिमा भराई । जयशेखरसूरिकृत कल्पसूत्र सुखावबोध विवरण की प्रत सुवर्ण अक्षरो से लिखवायी, वि.सं. १७१२ में लीलाधर शाह ने चरित्रनायक का अहमदाबाद में चातुर्मास करवाया, उसने शत्रुंजय का तीर्थसंघ भी निकाला, कवि सौभाग्यसागर गणि ने ''लीलाधर-रास'' में इस संघ का विस्तृत वर्णन किया है ।

इसके पश्चात वृद्ध लीलाधर संघवी ने वाचक सुखलाभ के पास दीक्षा ली वि.सं. १७१५ के भाद्रपद सुदि ६, मंगलवार को कालधर्म प्राप्त किया । उसके बाद वि.सं. १७२१ की मार्गशीर्ष सुदि ५, मंगलवार को लीलाधर के पुत्र ने श्रीगोडीजी का तीर्थसंघ भी निकाला, इत्यादि वर्णन उक्त रास की संवर्द्धित हस्तप्रत में से प्राप्त होता है ।

कल्याणसागरसूरि की उपदेश से हुए अन्य कार्यो की संक्षिप्त जानकारी इस तरह से है :-

१) महाराव भारमलजी के राज्याधिकारी वोरा धारसी ने वि.सं. १६७७ भूज में अंचलगच्छ का उपाश्रय बंधवाया, उन्होंने अपने दादा वीरमशाह की देरी भी बंधवायी और उसमें उनके चरणपादुका स्थापित की । वि.सं. १६६३ में भूज के संघ ने श्रीचिंतामणिपार्श्वनाथ के जिनालय का निर्माण किया, उसके खर्च में धारसी शाह ने चौथा भाग दिया ।

२) अहमदाबाद के श्रीश्रीमाल ज्ञातीय श्रेष्ठी भवान, पत्नी राजलदे के पुत्रो खीमजी और सुपजी ने वि.सं. १६७५ में वैशाख सुदि १३, शुक्रवार को श्रीशत्रुंजय की मूल टूंक में चौमुख जिनालय बंधवाया ।

३) अहमदाबाद के मंत्रीवर्य भंडारीजी ने शत्रुंजयगिरि पर बंधाये हुए श्रीचंद्रप्रभु जिनालय का जीर्णोद्धार वि.सं. १६८३ के माघ सुदि १३, सोमवार को श्राविका हीरबाई ने करवाया, उक्त मंत्रीवर्य की पीढी में वे छठ्ठी पीढी के थे । शत्रुंजयगिरि पर हीरबाई ने एक कुंड भी बंधवा दिया । हीरबाई ने संघ सहित शत्रुंजय की निन्यानवें बार यात्रा भी की । इस वंश में अनेक मंत्री हुए है ।

४) खंभात के राज्यमान्य श्रेष्ठी नागजी ने वहां विशाल जिनप्रासाद तथा गच्छनायक धर्ममूर्तिसूरि का स्तूप करवाया । तत्कालीन प्रमाण ग्रंथो में से इस श्रेष्ठी के बारे में बहुत महत्वपूर्ण उल्लेख मिलते है, ओसवालवंशीय शाह वत्था के वे पुत्र थे ।

५) खंभात के ओसवाल ज्ञातीय, गोखरु गोत्रीय श्रेष्ठी पद्मसिंह ने प्रतिष्ठा आदि कार्यो में बहुत धन खर्चा । जैन इतिहास में जगत सेठ प्रसिद्ध पुरुष हो गये है उनके वे पूर्वज थे ।वि.सं. १६८३ में पद्मसिंह शाह अहमदाबाद से खंभात आकर बसे और वहां उन्होंने कल्याणसागरसूरि के उपदेश से श्रीपार्श्वनाथ भगवान के पांच स्फटिकमय बिंब प्रतिष्ठित किये । सूरिजी को उन्होंने पांच सुवर्णाक्षरी कल्पसूत्रो की प्रते लिखवाकर वोहरायी उसी तरह चार मोतीमय पुडे भी अर्पण किये, उन्होंने श्रीशत्रुंजय का तीर्थसंघ भी निकाला था तथा ग्रन्थोद्धार में बहुत धन खर्चा था । उनके पुत्र अमरदत्त को शाहजंहा ने ''राय'' की पदवी दी थी उनके पुत्र उदयचंद और उनके फतेहचंद जिन्होंने जगत् सेठ की उच्च पदवी प्राप्त की ।

कल्याणसागरसूरि के उपदेश से वि.सं. १६८३ में जेठ सुदि ६, गुरुवार को पद्मसिंह शाह ने खंभात में ऐतिहासिक प्रतिष्ठा करायी थी, उस समय के अनेक उत्कीर्णित लेख उपलब्ध होते है । अन्य श्रेष्ठीवर्यो ने भी उस समय जिनबिंबो की प्रतिष्ठा थी । उनके मूर्ति लेखो में ''पद्मसिंह कारित प्रतिष्ठायां'' ऐसे उल्लेख होने से प्रतिष्ठा का खयाल आ जाता है । प्रतिष्ठा लेखो में जगत् सेठ के पिता उभयचंद को उदयचंद कहा है । जगत् सेठ का नाम भारत के राजकीय इतिहास में भी अमर है ।

६) वि.सं. १६८६ के चैत्र सुदि १५ के दिन देवगिरि निवासी श्रीमाली ज्ञातीय, लघु शाखीय श्रेष्ठी तुकजी के पुत्र हासुजी ने अपने कुटुंब सहित श्रीशत्रुंजय तीर्थ की यात्रा की और अद्बुदजी के मंदिर का कोट सहित जीर्णोद्धार किया.....

७) वि.सं. १७०२ के मार्गशीर्ष सुदि ६, शुक्रवार को दीव बंदर निवासी प्राग्वाट वंशीय मंत्री कमलसी ने प्रतिष्ठा आदि कार्य किये ।

इसके उपरांत भी चारित्रनायक के उपदेश से हुई प्रतिष्ठाओ के हजारो लेख उपलब्ध है । वि.सं. १६६७ के वैशाख वदि २, गुरुवार को सुधर्मागच्छ के भट्टारक जयकीर्तिसूरि के उपदेश से बुरहानपुर के श्रेष्ठी सोनी विमल द्वारा भरायी गयी जिनबिंबो की प्रतिष्ठा भी कल्याणसागरसूरि की निश्रा में हुई ।

सम्राट जहांगीर को चमत्कृत करने के संबंध में एक आख्यायिका ऐसी सुनने में आती है, कि मंत्री बंधु कुंरपाल - सोनपाल ने आगरा में दो जिनालय बंधवाये । किसी के कान भरने पर सम्राट ने हुक्म किया कि यदि प्रतिमाये चमत्कार न दिखाये तो मंदिर ध्वंस करने में आयेगें । कल्याणसागरसूरि के सूचन से जहांगीर द्वारा प्रतिमा को वंदन करने पर पाषाण प्रतिमा ने एक हाथ उपर करके सम्राट को उच्च स्वर में धर्मलाभ दिया । चमत्कृत होकर सम्राट ने दस हजार सुवर्ण मुद्रिकाये सूरि के चरणो में धरी । जो हो सो, पर तत्कालीन प्रमाण ग्रंथो में से कल्याणसागरसूरि को ''बादशाह सलीम जहांगीरमान्य'' तो कहने में आया ही है ।

कल्याणसागरसूरि और कच्छ के महाराव भारमलजी के बीच का समागम तो इतिहास प्रसिद्ध है । सूरि के उपदेश से महाराव ने जैनधर्म के उदात्त आदर्शो को अपनाया, उसी तरह पर्व के दिनो में अमारी पडह की उद्घोषणाये भी करायी । सूरि के कच्छ में विशेषरुप सी विचरण करने से उनके बीच दीर्घसूत्री सम्पर्क रहा है । इससे जर्मन विद्वान डॉ. कलाटे ने ऐसा लिखा है कि कल्याणसागरसूरि ने कच्छ के महाराजा का धर्मपरिवर्तन करवाया ।

कल्याणसागरसूरि राजमहल में जिस पाट के उपर बैठते थे, उसे गुरुपाट मानकर उसके उपर अन्य कोई नहीं, बैठे इस उद्देश्य से उसे अचलगच्छ के उपाश्रय मे भेज देने मे आया, वो वहां अभी भी विद्यमान है ।

महाराव भारमलजी के कुंवर भोजराजजी भी सूरि के अनन्य भक्त थे, वाचक विनय सागर ने उनकी तुष्टि के लिये कल्याणसागरसूरि की आज्ञा से संस्कृत में भोजव्याकरण रचा ।

कल्याणसागरसूरि समर्थ पट्टधर, प्रभावक आचार्य के उपरांत अच्छे ग्रंथकार भी थे, उन्होंने निम्नानुसार ग्रंथ रचे :-

१) शांतिनाथचरित्र २) सुरप्रियचरित्र ३) जिनस्तोत्र (सचित्र) ४) वीसविहरमान स्तवन ५) अगडदत्तरास ६) पार्श्वनाथ सहस्त्रनाम ७) पार्श्वनाथ अष्तोत्तरशतनाम ८) मिश्रलिंग कोष, विवरण उसी तरह विविध जिनस्तोत्र, स्तव इत्यादि ।

पिच्यासी वर्ष की वयोवृद्ध उम्र में कल्याणसागरसूरि वि.सं. १७१८ में विहार करते हुए भुज पधारे । उनके पट्टशिष्य अमरसागरसूरि, महोपाध्याय रत्न सागरजी सहित विशाल शिष्य परिवार से घिरे आचार्यश्री की श्रेष्ठीवर्य जगडूशाह ने बहुत भक्ति की ।यहां साधारण बीमारी के बाद सूरि समाधिपूर्वक कालधर्म को प्राप्त हुए, भुज के संघ ने उनकी शानदार अंत्येष्टि की । जगडूशाह ने दान में ५००० मुद्रिकाये उछालकर अष्टान्हिका महोत्सव किया, वहां संघ ने उनकी चरणपादुकाओ की स्थापना की जहां आज विशाल स्तूप की रचना हुई है ।

ऐसे महाप्रभावक युगप्रधान दादा कल्याणसागरसूरिश्वरजी म.सा. के चरणों में कोटि कोटि वंदन...

गुणस्थान क्रमारोह

आधार ग्रंथ - गुणस्थान क्रमारोह पू.आ. रत्नशेखरसूरि

चौदह गुणस्थानक को दो समय शेष होता है उसके पहले ८५ प्रकृति की सत्ता होती है, एक समय शेष होता है तब १३ प्रकृति की सत्ता होती है, अंत समय में सत्ता रहित होकर मुक्तिमें जाता है ।

पूर्व प्रयोग तोऽसंग - भावद्बंधविमोक्षतः ।
स्वभावपरिणामाच्च, सिद्धस्योर्द्धगतिभूवेत् ।।१२०।।

कर्मरहित सिद्ध भगवंतों की एक समय में उर्ध्वगति होती है । उर्ध्वगति के हेतु बताती है (१) पूर्वप्रयोग २) असंग ३) बंधविमोक्ष ४) स्वभाव उपरोक्त चार हेतुओं से जीव कार्यक्षय करते ही सिद्धशीला के उपर स्थिर होता है । इन चार हेतुओं को दृष्टांत सहित आगे समझाते है ।

कुलालचक्र दोलेषु - मुख्याणांहियथागतिः ।
पूर्वप्रयोगतः सिद्धाः सिद्धस्योर्ध्वगतिस्तथाः ।।१२४।।

जिस तरह कुंभार का चक्र एवं धनुष्य में से छुटा हुआ तीर, गुलेल से निकला हुआ पत्थर इन सबकी गति जिस तरह पूर्वप्रयोग से होती है उसी तरह सिद्ध परमात्मा की गति भी पूर्व प्रयोग से होती है ।

मृल्लेपसंगनिर्मोक्षाद्यथोदृष्टास्वलाबुनः ।
कर्मसंगविनिर्मोक्षात्तथासिद्धिगतिः स्मृता ।।१२२।।

जिस तरह मिट्टी का लेप अलग हो जाने से तुंबडा स्वंयमेव पानी के उपर आ जाता है । तुंबडे के उपर मिट्टी का लेप कर पानी में छोड दिया जाय तो प्रथम तो तुंबडा पानी में नीचे बैठ जाता है । परंतु जैसे मिट्टी का संग छूट जाता है तो स्वंयमेव उर्ध्वगति पाकर उपर आ जाता है, उसी तरह कर्म का संग छूट जाता है, तो आत्मा की असंग से उर्ध्वगति होती है ।

एरण्डफलबीजादे बंध छेदायद्यथागतिः ।
कर्मबंधनविच्छेदा त्सिद्धस्यपितथेक्ष्यते ।।१२३ ।।

एरंडफल के बीज समान बंध छेद से सिद्ध परमात्मा की उर्ध्वगति होती है । जिस तरह एरंड के फल परिपक्व होते है तब धूप लगने से उसके फल के बंधन तुटते है और बीज उछलकर दूर गिरता है, वैसे ही कर्मरुपी बंधन टूटने से सिद्ध भगवंतों की उर्ध्वगति होती है ।

यथाधस्तिर्यगुर्ध्वच लेष्टंवाद्यग्निवीचयः ।
स्वभावतः प्रवर्त्तते, तथोर्ध्वगतिरात्मनः ।।१२४।।

जिस तरह पत्थर का नीचे गिरने का स्वभाव है और अग्नि की ज्वाला का स्वभाव उपर जाने का है उसी

तरह आत्मा का स्वभाव उपर जाने का है ।

नचाधौगौरवाभावान्न तिर्यकप्रेरकं विना ।

न च धर्मास्तिकायस्याभावा कोपरिव्रजेत् ।।१२५।।

सिद्धों की उर्ध्वगति बतायी अतः कोई शंका कर सकता हैं की सिद्ध जीव नीचे अथवा तिरछी गति क्यों नहीं करते ? इसका समाधान करते हुए कहते है, कोई भी वस्तु भारी वजनवाली होती है, तो वह नीचे ही गिरेगी (पत्थर की तरह) और सिद्ध के जीव तो कर्मगुरुता रहित होते है, हलके है अर्थात् नीचे नहीं गिरते, नीचे गति नहीं करते । उसी तरह कर्मरहित होने से, कोई प्रेरक बल न होने से तिर्यंक गति भी नहीं करते ।

उपर के लोकान्त तक ही क्यों जाते है ? अलोक में क्यों नहीं ? इस शंका का समाधान करते हुए कहते है की गतिसहायक धर्मास्तिकाय अलोक में न होने से अलोक में सिद्ध के जीव जा नहीं सकते ।

मनोज्ञासुरभिस्तन्वी, पुण्यापरमभासुरा ।

प्राग्भारानामवसुधा, लोकमूर्ध्निव्यवस्थिता ।।१२६।।

इषद्प्राग्भारा नामक पृथ्वी को सिद्धशीला कहते है, यह सिद्धशीला चौदह राजलोक के मस्तक के उपर है, सिद्धशीला पृथ्वी के उपर लोक का अन्त है । इस लोकान्त को स्पर्श कर सिद्ध परमात्माओं के आत्मप्रदेश रहे हुए है । यह इषद्प्राग्भारा पृथ्वी कैसी है ? यह बताते हुए कहते है की यह पृथ्वी देखनेवाले के मन का हरण करनेवाली है । कपुरादि सुगंधी वस्तु से भी अधिक सुगंधी होती है । सूक्ष्म अवयववाली होती है , कोमल है, पवित्र और कांतियुक्त है ।

नृलोकतुल्य विषकंभा, सितछत्रनिभाशुभा ।

ऊर्ध्वतस्याः क्षितःसिद्धा, लोकां तेसमयवस्थता ।।१२७।।

पुनः यह सिद्धशीला कैसी है तो कहते है की मनुष्यलोक जितनी ही ४५ लाख योजन प्रमाणवाली है,उल्टे श्वेत छत्र के आकारकी है । शुभ्र है, सर्वार्थसिद्ध विमान से १२ योजन उपर है, बीच में आठ योजन मोटी है और किनारे पर मख्खी के पंख से भी अधिक पतली होती है, उसके एक योजन उपर अलोक है, उसके चौविस में भाग में सिद्ध भगवंतो की स्थिति होती है ।

कालावसर संस्थाना, यामूषागतसिकथिका ।

तत्रस्थाकाशसंकाराशाऽऽकारासिद्धावगाहना ।।१२८।।

सिद्ध परमात्मा जब देह का त्याग करते है, तब जिस संस्थान में होता है, वही संस्थान मुक्ति में सिद्ध जीवों के आत्मप्रदेशों का होता है । दृष्टांत से समझाते हुए कहते है की सुवर्ण को गलाने का जो पात्र मुषाह है उसमें जब सुवर्ण गाले जाता है, तब जो उसका संस्थान है वैसे ही सिद्ध जीवों का संस्थान जानना ।

ज्ञातारोऽ खिलतत्वानां, दृष्टारश्चैकहेलया ।

गुणपर्याय युक्तानां, त्रैलोक्योदरवर्न्तिनाम् ।।१२९।।

सिद्ध भगवंत चौदह राजलोक में जो गुणपर्याययुक्त संपूर्ण तत्व है एवं जीवजीवादिक जो पदार्थ है उन्हें जानते है । सिर्फ जानते ही नहीं परंतु विशेष उपयोग से देखते भी है । यह देखना भी एक लीला मात्र है ।

अनन्तंकेवलंज्ञानं, ज्ञानावरणसंक्षयात् ।
अनन्तंदर्शणं चै दर्शणावरणक्षयात् ।।१३०।।

ज्ञानावरणीय कर्म के संपूर्ण क्षय से सिद्ध भगवंतों को अनंत केवलज्ञान होता है । और दर्शनावरणीय कर्म के संपूर्ण क्षय से अनंत दर्शन होता है ।

क्षायिके शुद्धसम्यक्त्वे चारित्र मोहनिग्रहात् ।
अनंतसुवीर्य्ये च वेदविघ्नक्षयाक्रमात् ।।१३१।।

सिद्ध परमात्मा को शुद्ध क्षायिक सम्यक्त्व एवं यथाख्यात चारित्र सम्यक्त्व मोहनीय और चारित्र मोहनीय के क्षय से होता है । उसी तरह वेदनीय कर्म के संपूर्ण क्षय से अनंतसुख होता है और अंतराय कर्म के क्षय से अनंतवीर्य होता है ।

आयुषः क्षीण भावत्वात् , सिद्धानाम क्षयास्थितिः ।
नामगोत्रक्षयादेवा मूर्त्तानन्तावगाहना ।।१३२।।

आयुष्यकर्म का क्षय करने से सिद्धों की अक्षय गति है । पुनश्च उन्हें संसार में आना नहीं है । नामकर्म और गोत्रकर्म का क्षय होने से सिद्ध भगवंत अरुपी है एवं अनंत अवगाहनावाले होते है ।

यत्सौख्यंच क्रिशक्रादि - पदवी भोग संभवम् ।
ततोनन्तगुणंतेषां, सिद्धावक्लेशमव्ययम् ।।१३३।।

चक्रवर्तीपद एवं इन्द्रपद को भोगने से जो सुख प्राप्त होता है, उसे उत्कृष्ट सुख कहते हैं, परंतु इस सुखसे कई अनंतगुना अधिक सुख मोक्ष में रहे हुए सिद्ध भगवंतों को है । अज्ञान से एवं रागद्वेष से क्लेश उत्पन्न होते है । परंतु सिद्ध भगवंत संसार से और उसके कारणभूत राग-द्वेष से मुक्त हैं अतः उन्हें क्लेश नहीं है। उनका सुख क्लेशरहित अव्यय है । उसका कभी भी नाश नहीं, यह सुख आत्मरमणता का है ।

यदाराध्यंचयत्साध्यं, यद्ध्येयंयञ्चदुर्लभम् ।
चिदानन्दमयंतत्तैः संप्राप्तम्परम्पदम् ।।१३४।।

आराधक पुरष जिसके लिये सुंदर आराधना करता है, जो पद साधक पुरुषों को अच्छी तरह ज्ञान-दर्शन-चारित्रादिक की साधना से प्राप्त होता है, ध्यान करने वाले योगी पुरुष निरंतर जिसका ध्यान करते है ऐसा यह दुर्लभ पद है ।अभव्य जीवों को सदा अलभ्य है । दुर्भव्य जीवों को दुःख कष्ट से प्राप्त हो ऐसा यह पद है । मुक्ति प्राप्त करने योग्य सामग्री का जिन्हें अभाव है, ऐसे भव्य जीवों को भी सदा दुर्लभ है । ऐसे दुर्लभ मुक्ति पद को परमपद को चिदानंदमय सिद्ध भगवंतो ने प्राप्त किया है ।

नात्यन्ताभावरुपा नच जडिममयी व्योमवद् व्यापिनीनो ।
नव्यावृत्तिन्दधानाविषयसुखधनानेष्यते सर्वविद्भिः ।।
सद्रूपात्मप्रसादातदृगवममगुणौघेनसंसारसारा ।
निःसीमात्यक्षसौख्यो दयवसतिरनिः पातिनी मुक्तिरुत्का ।।१३५।।

अनेक मतावलंबी आचार्य अनेक प्रकार के मुक्ति को मानते हैं, उनके सबके कथन का खंडन कर तात्विक मुक्ति का स्वरुप बताते है ।

कई आचार्य अत्यन्ताभावरुप मुक्ति बताते है....

कई आचार्य ज्ञान के अभाव को मुक्ति कहते है.....

कई आचार्य आकाश के जैसी सर्वव्यापी मुक्ति है ऐसा कहते है ।

अन्य आचार्य मुक्ति में जाने के बाद फिर से अवतार धारण करने रुप मुक्ति को मानते है ।

कोई क्लिष्ट कर्म वाले आचार्य विषयसुखमय मुक्ति मानते है ।

परंतु ये सब मानना याने सर्वूत भगवंत के मत विरुद्ध, सर्वज्ञ भगवंत विद्यमान चिद्रुप आत्मप्रसस्ति से सम्यक्दर्शन, स.ज्ञान, सम्यक् चारित्र के समूह से, असार ऐसे संसार में सारभूत एवं मर्यादा रहित सुख का स्थान एवं अनंत अतिन्द्रिय जो आनंद उसका अनुभव करने का स्थान तथा अनीःपातनी याने मोक्ष में जाने के बाद फिर से संसार में आने के अभावरुप मुक्ति को मानते है ।

इत्युद्धृतो गुणस्थानरत्नराशिः श्रुतार्णवात् ।
पूर्वषिसूक्तिनावैव रत्नशेखरसूरिभिः ।।१३६।।

पूर्व में कहे गये स्वरुप विशिष्ट गुणस्थान नामक ग्रंथरुपी रत्नराशि को पूर्वाचार्यों द्वारा रचित अनेक ग्रन्थरुपी समुद्र से उद्धार किया है । पूर्वाचार्यों के शुद्ध वाणीरुप नाव पर बैठकर श्री रत्नशेखरसूरि ने स्व-पर कल्याण के लिये उद्धृत किया है ।

जिनाज्ञाविरुद्ध लिखा गया हो तो त्रिविधे त्रिविधे मिच्छामि दुक्कडं ।

भाग २

मद और मानव

बल–मद

शारीरिक तंदुरस्ती के कारण प्राप्त हुए बल का मद, अभिमान या गर्व करना यह बल-मद है ।

आदिनाथ भगवान के पुत्र बाहुबली ने बल का मद करके भाई के साथ युद्ध किया....

जयवंते जिन शासन के रहस्य जब साधक की सूक्ष्म दृष्टि एवं बुद्धि से खुलने लगते है, तब स्वयंमेव इस शासन के प्रति हाथ जुड जाते है, मस्तक झुक जाता है । मद मानव को कैसे सताता है और बलवान को भी किस तरह कर्म की जंजीरो में जकड देता है, यह वास्तव में समझने जैसा है ।

प्रभु आदिनाथ के पुत्र बाहुबली अत्यन्त बलवान थे । भरत महाराजा ने सारे बंधुओ को उनकी आज्ञा मानने की बात बतायी । सारे पुत्र पिता के पास क्या करना ? यह पूछने गये । प्रभु ने वैराग्यमय देशना दी । अठ्ठानवें लघु बंधु भरत को राज्य देकर साधु बन गये, पर बाहुबली आज्ञा मानने तैयार नहीं थे, बाहुबली आज्ञा न माने तो चक्ररत्न आयुधशाला में प्रवेश नहीं करता है, भरत चक्रवर्ती जाहिर नहीं हो पाये । भरत महाराजा ने फिर से संदेश भेजकर आज्ञा स्वीकारने का निवेदन किया ।

बाहुबली कहते है ९८ भाई राज्य देकर गये फिर भी संतोष नहीं हुआ, वो बेचारे राज्य त्याग साधु बने पर मैं बलवान हूं, मेरा राज्य संभालने शक्तिमान हुं, युद्ध करुंगा पर आज्ञा नहीं स्वीकारुंगा । बल का मद बाहुबली को बडे भाई के साथ लडने प्रेरित करता है ।

भरत बाहुबली आमने सामने लडने तैयार हुए, प्रत्येक युद्ध में भरत की पराजय और बाहुबली की विजय होने लगी । जैसे जैसे पराजय होती गयी वैसे वैसे भरत ज्यादा परेशान होने लगे, जैसे जैसे जीत होती गयी वैसे वैसे बाहुबली का अहंकार बढने लगा ।

बाहुबली को हराने भरत महाराजा ने चक्र छोडा, चक्ररत्न बाहुबली को प्रदक्षिणा देकर वापस लौटा, बाहुबली का अहंकार क्रोध में परिणित हो गया, मारने के लिये मुठ्ठी उठायी, ज्ञान की चिंगारी प्रकटी... बाहुबली ने भरत के सामने का युद्ध छोड कर्म के सामने का युद्ध आरंभ किया ।

बाहुबली को बडे भाई के साथ युद्ध करानेवाला बलमद था, हमारे जीवन में तो ऐसा नहीं घट रहा न ? बलमद हमको छोटे या बडे निर्बलो की ओर क्रूर-निर्दयी तो नहीं बना रहा न ? जागृत बन, आत्म परिक्षण कर जीवन में से ऐसे बलमद को जल्दी विदायी देकर हमारे बल का उपयोग निर्बलो के रक्षण में करते है ।

रुप–मद

सुंदर अंग-उपांग एवं रुप की प्राप्ति होने पर उस सौंदर्य का गर्व आये, अभिमान हो जाय वो रुप मद कहलाता है ।

सनत् चक्रवर्ती ने रुप मद किया था.....

सनत् कुमार चक्रवर्ती थे, छः खंड के अधिपति थे ....

रुप में बेजोड थे, देव या देवेन्द्र भी उनकी बराबरी कर सके ऐसा नहीं था ।

एक बार देव सभा में सनत चक्रवर्ती के रुप की प्रशंसा देवेन्द्र ने की, वहां कुछ देवो को शंका हुई, क्या मानव देव से रुप में आगे बढ सकता है ? उनके दिमाग में यह बात नहीं बैठ रही थी । देवेन्द्र की बात सुन सनत् चक्रवर्ती के रुप की परीक्षा करने दो देव ब्राह्मण का रुप धारण कर अवनि पर पधारे.....

सनत् कुमार के राजमहल में पधारे, चक्रवर्ती तो स्नान, शृंगार सजने तैयार हो रहे थे । ब्राम्हणों ने चक्रवर्ती का रुप देखा तो आश्चर्य मुग्ध बन गये, ऐसा अद्‌भुत रुप ?

पर तब तक तो रुप के मद में पागल चक्रवर्ती बोले यह तो कुछ भी रुप नहीं है । मैं स्नान आदि से निपट जांऊ, शृंगार अलंकार से सज्ज होकर राज दरबार में पधारुं तब मेरा रुप देखने पधारना ।

दो घंटे बाद ब्राम्हण फिर से राज दरबार में पधारे, सनत् कुमार का रुप देखा और मस्तक पर हाथ रख लिया मानो कहते न हो ''नहीं, राजेश्वर, नहीं ! हमने प्रथम देखा वो यह रुप नहीं है ।

राजेश्वर कहते है ''वो मैं ही हूं....''

''राजन ! दो घंटे पहले जो काया निरोगी थी वो अब तो रोगी बन गयी है । रुप में विकृति आ गयी है, शरीर में सोलह रोग उत्पन्न हो गये है ।'' ब्राम्हणो ने कहा ।

बात की सत्यता की खात्री होते ही सनत् कुमार का रुप मद गुम हो गया । काया की माया व्यर्थ है, रुप चार दिन की चांदनी जैसा है, सच्चा रुप देह में नहीं आत्मा के स्वरुप में है, यह बात समझ में आ गयी, वैद्य या हकीमो की शरण के बदले अरिहंत की शरण सच्ची लगने लगी, श्रेष्ठ लगी, चक्रवर्ती की सत्ता के बजाय कर्मसत्ता बलवान लगने लगी, छः खंड के वैभव से आत्म वैभव सुंदर भासित होने लगा, संसार के बजाय संयम प्यारा लगा, भोग के बजाय त्याग से प्रीत बंधी और छः खंड का त्याग कर सनत् कुमार चक्रवर्ती अणगार बन चल निकले, लब्धिवंत बने, पर काया की माया विस्मृतकर, स्व-रुप में समा गये, मानो कहते हो ।

काया नी विसारी माय, स्वरुपे समाया अेवा, निर्ग्रंथ नो पंथ, भव अंत नो उपाय छे.....

तप–मद

दुष्कर तप करने वाले तपस्वी अनेक कर्मो को जलाकर राख करते है, पर यदि इस तप का अभिमान आ जाये, तो तप-मद से उसके फल को हार जाते है ।

कुरगडु मुनि के साथ के साथी मुनवरो को तप का अभिमान हुआ था.....

संवत्सरी का पर्व आकर खडा रहा....

छोटे बडे सभी ने तप का यज्ञ मांडा, किसी के छः महिने के उपवास, किसी के पांच महिने के, कोई

चार महिने के उपवासी किसी की तीन मासी, दो मासी, मासक्षमण, पर यह तो कुरगडु मुनि है । क्षुधा वेदनीय का ऐसा जोरदार उदय है की, कुछ पेट में डाले बिना शांत होता नहीं है । आज सभी साथी साधुओ का महा-तप है, ऐसे में से मुनिराज दुःखते हृदय से आहार बोहरने निकले, सुझते आहार में भात मिले, भात लेकर स्वस्थान पर आये, गोचरी की आलोचना ली, साथी मुनियो को गोचरी बताकर निमंत्रण दिया ।

साथी मुनि तपस्वी थे, महा तपस्वी थे, पर तप का अभिमान रोम-रोम में व्याप्त था, आराधना का अभिमान जब जीवन में आता है तब आराधना उपर चढाने के बजाय नीचे गिराती है, भान भुलाती है, साथी तपस्वी मुनि भान भूले, निमंत्रण देने वाले मुनि के पात्र में थुंके, मनचाहे वैसे अपमानित करके बोलने लगे ।

कुरुगडु मुनि स्वयं को धन्य मानते है, कि मुझे तो तपस्वी मुनियो के पास से प्रसाद मिला, आत्मा के अणाहारी पद की भावना भाते हुए, स्वयं की आहारसंज्ञा की निंदा करते हुए, आंसू बहाते आंखे लिये आहार करने लगे, भवोभव के कर्म खपने लगे, और चार घाती कर्म का नाश कर खाते-खाते केवली बने ।

चार·मासी, तीन मासी, दो मासी, मासक्षमण करने वाले मुनि रह गये ओर कुरगडु मुनि केवली बन गये । केवलीज्ञानी को खमाते हुए साथी साधु भी बाद में केवली बन, मोक्ष रमणी का वरण किया ।

मद का ऐसा स्वरुप जानकर, समझकर मुमुक्षु आत्माओ को कदम-कदम पर सचेत रहने जैसा है । कहीं पिछले दरवाजे से भी मद का हमारे जीवन में प्रवेश न हो जाय ओर हमारे साधना के बाग को तहस-नहस न कर डाले इसका ख्याल रखना अत्यंत आवश्यक है । मद साधन को भी शस्त्र बना देने की ताकत रखता है , इसका ध्यान यहां पर आ ही जाता है । आगे भी एक ऐसी ही कहानी है, जानने जैसी, समझकर सावधान बनने जैसी ।

श्रुत–मद

पूर्व भव की आराधना के कारण बुद्धि अच्छी मिले, बहुत पढ सके पर उस प्राप्त किये हुए ज्ञान को यदि पचा नहीं सके तो उसे श्रुत-ज्ञान का भी गर्व आ जाय, अभिमान आ जाय वो श्रुत-मद कहलाता है ।

शास्त्र में स्थूलिभद्रजी को श्रुत-मद होने की बात प्रसिद्ध है ।

नेपालदेश में महाप्राणायम की साधना कर रहे अंतिम श्रुतकेवली श्रीभद्रबाहुस्वामी के पास श्रीजैन संघ ने अत्यन्त होशियार ऐसे साधु समूह को चौदह पूर्व पढने भेजा । स्व की साधना के साथ संघ कल्याण की भावना से भद्रबाहु स्वामी मुनियो को पूर्व पढाने लगे, सारे साधु भगवंत उत्साह से पाठ लेने लगे, पर जैसे जैसे समय बीतता गया वैसे वैसे पूर्व का ज्ञान पढना साधुओ को कठिन लगने लगा, एक के बाद एक साधु कम होते चले गये । अंत में रहे एकमात्र स्थूलिभद्र । प्रतिदिन नियमित पाठ लेते है, अभ्यास शुरु है ।

एक बार स्थूलिभद्र को यक्षादि सात बहन साध्वीजी वंदन करने आये, पढे हुए श्रुत के मद में स्थूलिभद्र को अपने ज्ञान का प्रभाव बताने के भाव जागे ओर गुफा में सिंह का रुप लेकर बैठ गये। साध्वीजी भाई महाराज नहीं मिलने पर तुरंत वापस लौटे, भद्रबाहु के पूछने पर बताया वहां तो भाई महाराज नहीं है, सिंह है। फिर से वहां जाकर वंदन करने को कहा और स्वयं ज्ञान का उपयोग करने पर भद्रबाहुस्वामी बात को समझ गये, उनका मन विचार में पड गया - '' अब बाद के जीव श्रुत-ज्ञान को पचा नहीं पायेंगे, आहार के अजीर्ण से ज्ञान का अजीर्ण ज्यादा खतरनाक है, ऐसे अजीर्ण से जीवो को तथा शासन को लाभ के बजाय नुकसान ज्यादा होगा।''

समय होने पर स्थूलिभद्र वाचना (पाठ) लेने आये, भद्रबाहुस्वामी ने आगे पाठ देने से स्पष्ट इंकार कर दिया। स्थूलिभद्र विचार में पडे उन्हें स्वयं की भूल समझी और बारम्बार माफी मांगी पर भद्रबाहुस्वामी नहीं माने संघ के बहुत निवेदन करने पर आगे किसी को नहीं देने की शर्त पर आगे के पूर्वो का मूल पाठ दिया, भावार्थ और रहस्य नहीं सिखाया, और स्थूलिभद्र के श्रुतमद के परिणाम स्वरुप इस भरत क्षेत्र के १४ पूर्व के रहस्य का एवं परम्परा से चौदह पूर्व का लोप हुआ।

मद के ऐसे विविध प्रकारो को एवं फल को जानकर मानव ! सावधान बन साधना के पंथ पर चलना, मद कहीं तेरे साधना जीवन को सिद्धि के शिखर पर पहुँचने से पहले ही लुढका न दे, साधना को तहस-नहस नहीं कर डाले इस हेतु जागृत बनना।

दुःख टले तो सुख मिले

दुःखद्विट् सुखलिप्सुर्मोहान्धत्वादिद्रष्ट गुणदोषः ।
यां यां करोति चष्टां, तया तया दुःखमादत्ते ।।

इस विश्व के सारे के सारे जीवो को दुःख अच्छा नहीं लगता....

प्रत्येक जीव को सुख ही अच्छा लगता है....

जन्म से लेकर मरण तक निरंतर जीव सुख को प्राप्त करने की और दुःख को दूर करने की प्रवृति करता है फिर भी उससे (ऐसी प्रवृति से) जीव दुःख ही पाता है ।

कैसी आश्चर्यकारी यह घटना है ? सुख अच्छा लगता है, सुख चाहिये है, सुख को प्राप्त करने का प्रयत्न करता है, फिर भी वो दुःख को ही पाता है ।

क्या कारण होगा उसकी पीछे ?

निरंतर दुःख को दूर करते रहने के बावजूद जब दुःख के पहाड टूट पडते हो, लगातार सुख प्राप्ति की इच्छा और पाने के लिये के पुरुषार्थ करने पर भी जब सुख दूर भागता हो तब समझदार, होशियार, सज्जनो को उस विषय में विचारणा, संशोधन करना ही चाहिये ।

विचारणा और संशोधन के द्वारा सत्य शोध कर निकालना ही चाहिये । हमारे सब के पुण्य वाचक उमास्वातिजी ने प्रशमरति प्रकरण में इसी बाबत की चर्चा की है ।

उमास्वातिजी महाराज कहते है, ''हे अज्ञानी जीव ! तू मोह में पागल बना हुआ है । तेरे विवेक चक्षु बंद हो गये है, इसलीये तेरे लिये हितकर क्या और अहितकर क्या ? यह तू जानता नहीं, समझ भी नहीं पाता है ।

इन सब के कारण दुःख पर दुर्भाव होता है और सुख पर प्रेम जागता है, इससे रागद्वेष की परिणति जाग उठती है, जो अंत में कर्मबंध का और परम्परा से संसार का और संसार के समस्त दुःखो का मूल है ।

अज्ञानी जीव को संसार में इन्द्रियो के विषय, विषयसुख प्यारे लगते है पर प्यारे और मीठे लगते इस संसार के सुखो का अंतिम परिणाम क्या? इन्द्रियो के सुख जीव को आज ही मिले है ऐसा कहां है ? अनादिकाल से ये इन्द्रियों के सुख इस जीव ने बहुत भोगे पर उसे कहीं भी तृप्ति नहीं हुई । आज के मिले हुए सुखो से अनेक गुना सुख राजा, महाराजा के भव में, देव आदि के भवों में इस जीव ने भोगे, पर न विषयो से विराम पाया या न तो विषयो के विषचक्र को या उसके विषम विपाक को समझ सका ।

जीव जिस, जिस गति में, जिस... जिस.... योनिमें, जिस, जिस जाति में जाता है उस - उस स्थान

के अनुरुप जीव को इन्द्रिया मिलती है । जीव एकेन्द्रिय में हो तो एक ही स्पर्शेन्द्रिय होती है, पर जैसे, जैसे इन्द्रियाँ बढती जाती है वैसे-वैसे सुख की लालसाये भी बढती जाती है, ये इन्द्रियो के सुख की लालसा महाकाय जीवो को भी पछाड देती है ।

हाथी जैसे बलवान, स्थूल प्राणी को पकडने के लिये उसके इन्द्रिय सुख, लालसा की कमजोर कडी को ही नजर में रखा जाता है ।

हाथी को पकडना हो तो उसके नजदीक में एक बदा खड्डा खोदने में आता है, उसके सामने की ओर हथिनी को खडा रखने में आता है, या खड्डे में कागज की हथिनी बना कर रखने में आती है, खड्डे के आस-पास हथिनी का मूत्र छांटने में आता है ।हथिनी के मूत्र की गंध से आकर्षित हो हाथी वहां आता है । खड्डे के पास आत ही कागज की हथिनी को देखकर कामविकार के वश हो जाता है । दौडता, दौडता आकर हथिनी के पास जाने के लिये उतावला हो जाता है, वहां खड्डे में गिरकर स्वयं को बंधनग्रस्त बनाता है ।

स्पर्शेन्द्रिय के वश होने से हाथी जैसे बलवान प्राणी की हालत ऐसी होती है ।

हे जीव ! ऐसी हालत तेरी खुद की अनेक भवो में स्पर्शेन्द्रिय के वश से हुई है । क्या तू अभी भी नहीं जागेगा, आ तूझे दूसरी बात समझाऊं ।

स्पर्शेन्द्रिय के बाद आता है रसनेन्द्रिय ! इस रसनेन्द्रिय की गुलामी ने बेइन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के सारे जीवो को पटका है ।

मछली को पकडना हो या चूहे को पकडना हो, उनकी रसनेन्द्रिय की कमजोर कडी को ही लक्ष्य में लिया जाता है, मछलियो को पकडने जाल में खाद्य पदार्थ आंकडें अटकाते है और चूहो को पकडने पिंजरे में खाद्य पदार्थ आंकडे में अटकाने में आता है, जिस खाने की लालच से मछलियाँ जाल में फंसती है, चूहे पिंजरे में फंसते, बंधन में पडने से अंत में मरण की शरण में जाते है ।

हम इस तरह मरण की शरण में कितनी बार हुए ? अभी भी रसनेन्द्रिय पर विजय पायी या उसके गुलाम ही रहे ।

एक - एक इंद्रिय की परवशता ने हमें अनादिकाल से भटकाया फिर भी हमारी आत्मा जागती नहीं है । सावधान तो वो कहलाता है जो आगे चलने वाले को ठोकर लगते देख-जानकर जागृत बन जाता है, हम कब जागृत बनेंगे ?

आइये देखते है घ्राणेन्द्रिय की गुलामी के परिणाम !

सुंगध के मोह से मुक्त आकाश में उडता भंवरा कमल के उपर जाकर बैठता है, सुगंध को छोडने की इच्छा होती नहीं है, सांझ तक उसके उपर बैठा रहता हैं, उसी में मस्त बनता है, शाम होते ही कमल बंद होने लगता है, भंवरा समझता है कि कमल बंद हो जायेगा पर घ्राणेन्द्रिय की चाहत उसे मुक्त गगन में उडने नहीं देती, कमल की सुगंध में

जकड कर रखती है, भ्रमर अभी उडता हूं, अभी उडता हूं ऐसा सोचता है, तब तक तो कमल बंद हो जाता है, आकाश में उडता भ्रमर कमल में कैद हो जाता है । पूरी रात भ्रमर कमल में से बाहर निकल नहीं पाता है । अंदर बैठे - बैठे उसका दम घुटता है, पछताता है, वहां उसे एक आशा होती है, सुबह होगी, सूरज उगेगा, कमल खिलेगा, तब मैं उड जाऊंगा, पर उसके मन के मनोरथ मन में ही रह जाते है, प्रभात होने से पहले ही वहां जलाशय में पानी पीने हाथी आता है, कमल को उखाडकर खा जाता है, बेचारा भंवरा मरण की शरण में जाता है ।

ऐसी कैद की यातना, मरण की वेदना हमारे जीव ने इन्द्रियो की पराधीनता एवं गुलामी के कारण अनंत बार भोगी है, फिर भी सत्य समझ में आया नहीं है ।

ऐसी ही घ्राणेन्द्रिय की गुलामी से मरण पाते भ्रमरो की दूसरी भी कहानी है ।

हाथी के गंडस्थल में से मद झरता है इस मद की सुगंध से आकर्षित होकर ही हाथी के मस्तक के पास और आजू-बाजू में अनेक भंवरे एकत्रित होते है, गुंजारव करते है, भ्रमरो के गुंजारव से परेशान हो हाथी लगातार कान फडफडाता है, उसके झपाटे में आकर अनेक भ्रमर मरण को पाते है ।

ऐसी कितनी बार मरण वेदना अज्ञानदशा में इस जीव ने भोगी है...

यह है चक्षुरिन्द्रिय की गुलामी की कथा ....

सूर्य अस्त होता है, धीरे-धीरे अंधकार का साम्राज्य चारो ओर फैलता है, अंधकार को दूर करने,प्रकाश को पाने घर-घर दीये प्रगटाये जाते है। दीये की सुवर्णमय ज्योति देखकर पतंगा भान भूलता है, परिणाम का विचार ही नहीं करता, ज्योति के मोह में पडता है, आकर्षण पाकर ज्योति पर पडता है, तुरंत ही जलकर नाश पाता है, यह कैसी जोरदार गुलामी है ।

अब आती है पांचवी श्रोतिन्द्रिय की गुलामी के करण अंजाम को दर्शाती वास्तविकता !

मुक्त जंगल में दौडते हिरण हो या अपने बिल में रहते सर्प हो उन्हें पकडने के लिये क्या करने में आता है ? जानते हो आप ? नहीं ? तो सुनो....

जब हिरण को चंगुल में फंसाना हो तब शिकारी पहले जाल बिछाता है फिर शिकारी वहां सुंदर, कर्णप्रिय संगीत छेडता है । मधुर संगीत सुनते ही थोडे समय में जंगल के हिरण आते है, एकत्रित होते है । संगीत सुनने में लयलीन बन जाते है, बेचारो को पता नहीं कि यह संगीत सुनने जाने से प्राण खोने पडेगें । जैसे ही हिरण स्थिर होकर संगीत सुनते है वैसे ही शिकारी बिछाया हुआ जला खींच लेता है, भोले हिरण उसके भोग बन जाते, यह है श्रोतेन्द्रिय की परवशता का फल ।

ऐसी ही हालत है सर्प या नाग-नागिन की ! कर्ण के वश होकर सर्प बांसुरी का स्वर सुनने अपने बिल में से बाहर निकलता है और सपेरा उसे पकड लेता है, फिर उसे जीवन पर्यंत कैदखाने में बंद होकर रहना पडता है ।

ऐसी तो एक-एक इन्द्रिय की पराधीनता के भयंकर परिणामो को दर्शाती अनेक कथायें है । इन कथाओ की बात बताकर सुज्ञ मुनि भगवंत आश्रव भावना का आलेखन करते कहते है -

मृग पतंग अलि माछलो करि एक विषय प्रपंच

दुःखीया ते किम सुख लहे रे, जस परवश एह पंचो रे.....

हे मानव ! समझ तो सही, एक-एक इन्द्रिय की गुलामी हिरण, पंतगे, भ्रमर,मछली एवं हाथी को मौत के घाट उतारती है, दुःखी - दुःखी कर देती है तो जो पांच -पांच इन्द्रियो का गुलाम है उसकी हालत क्या होगी ? वो कैसे सुखी हो पायेगा ?

इन्द्रियो की गुलामी यह सुख का नहीं दुःख का मार्ग है। सुख का मार्ग इन्द्रियों को जीतने से मिलता है, सुखी बनने के लिये जीतेन्द्रिय बनना पडता है । जो जीतेन्द्रिय बने है उन्होंने ही सुख को पाया है, सुखी बने है ।

कामभोग में सुख नहीं है, सुखाभास है, सच्चा सुख तो है कामविजेता बनने में, यह बात स्थूलिभद्रजी ने साबित कर बतायी है ।

आहार संज्ञा की गुलामी में सुख नहीं है, सुखाभास है, सच्चा सुख तो है अणहारी पद को पाने में ।

चलो तैयार हो जाओ.....

दुःख टालना हो, सुख पाना हो.....

तो इन्द्रियों का दास नहीं, स्वामी बनने का पुरुषार्थ करें.....

यही एकमात्र सुख प्राप्ति का राजमार्ग है....